ISSN:2583-8849



ज्योत्सना सक्सेना "प्रकाश "
जयपुर, राजस्थान

साँझ का सिंदूरी आसमान

समय की नदी जब शांत और मद्धम बहती है, तो तट पर जमा काई भी सुहानी लगने लगती है। दीपाली के जीवन की नदी भी कुछ ऐसी ही थी..स्थिर, शांत और एकाकी। पति गोपाल का साथ छूटे बरसों बीत गए थे, और चार साल पहले इकलौते बेटे चैतन्य ने भी अनन्या के साथ प्रेम-विवाह कर नई गृहस्थी बसा ली थी।

दीपाली के पास अब केवल यादों का एक संदूक था और वर्तमान के नाम पर पड़ोस के बच्चों की किलकारियाँ।
दीपाली अड़ोस-पड़ोस के बच्चों को संगीत, ड्राइंग और पेंटिंग सिखाती। कभी उनके साथ नृत्य करती, तो कभी घंटों एकांत में साहित्य पढ़ती। यह सक्रियता उसके भीतर के खालीपन को भरने का एक उपक्रम मात्र थी। लेकिन शाम ढलते ही जब वह सोसायटी के पार्क में टहलने जाती, तो प्रकृति की नीरवता उसे अपनी नियति का एहसास करा देती।

एक नवरश्मि किरण के उदय के रूप में उसे मित्र राघवेंद्र मिले जो पार्क के उसी एकांत में बैठे दिखे। दीपाली की नज़र अक्सर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व पर पड़ती। वे सज्जन, उम्र के उस पड़ाव पर थे जहाँ लोग अक्सर गंभीरता का चोगा ओढ़ लेते हैं, लेकिन वे बच्चों के बीच बच्चा बन जाते थे..कभी क्रिकेट के मैदान में चौके-छक्के जड़ते, तो कभी आँखों पर पट्टी बाँधकर 'छुपम-छुपाई' खेलते। उनकी खिलखिलाहट में एक ऐसी मासूमियत थी जो दीपाली को गहरे तक प्रभावित कर गई।
शीघ्र ही, वह अनजानापन परिचय में बदल गया। उन्होंने स्वयं आगे बढ़कर हाथ बढ़ाया, "मैं राघवेंद्र, इसी वर्ष मजिस्ट्रेट के पद से सेवामुक्त हुआ हूँ। पाँच वर्ष पूर्व पत्नी को खोने के बाद इन बच्चों में ही अपनी खुशियाँ ढूँढता हूँ..और आप?"
राघवेंद्र जी का विधुर होना और उनकी सहज स्वीकारोक्ति दीपाली के मन को छू गई। बातों का सिलसिला जो शुरू हुआ, तो फिर रुकने का नाम न लिया। वे दोनों समाज के उस हाशिये पर थे जहाँ अपने ही बच्चे परदेश में अपनी दुनिया बसा चुके थे।

धीरे-धीरे, बेंच पर बैठने का वह समय दीपाली के लिए 'ऑक्सीजन' बन गया। वे दोनों दो सहेलियों की तरह मन हल्का करते..कभी घर-परिवार की बातें, कभी राजनीति, तो कभी दर्शन और साहित्य पर खूब चर्चा होती।

दीपाली को अब दिन बड़ा लगने लगा था। उसे प्रतीक्षा रहती उस सुनहरी शाम की, जब वह राघवेंद्र जी से मिल सके उन्हें अपने हाथ का बना कुछ खिला सके..उसे लगता, क्या राघवेंद्र जी को भी ऐसा ही लगता होगा? यह सोचकर उसके होंठों पर एक गुलाबी मुस्कान तैर जाती।
पर बच्चों से सहमति का डर,समाज का दंश और भी विचारों की जकड़न से वह छिटक देती थी विचार..।

एक सुबह, दीपाली के घर के ठीक सामने वाले आलीशान बंगले में गृह-प्रवेश की हलचल थी। मोहल्ले की सुगंधा और वीणा सज-धजकर वहाँ जा रही थीं। दीपाली को चुपचाप खड़ा देख उन्होंने व्यंग्यपूर्ण सहानुभूति के साथ पूछा, "अरे दीपाली जी, क्या नए पड़ोसियों ने आपको नहीं बुलाया?"

दीपाली के 'ना' कहने पर उन दोनों ने एक-दूसरे की आँखों में झाँका और फुसफुसाते हुए कहा, "आप सिंगल हैं न, शायद इसीलिए शुभ कार्यों से आपको दूर रखा गया है।"
वे शब्द नहीं, तीखे बाण थे जो दीपाली के हृदय को छलनी कर गए। वह भीतर तक टूट गई।वह पढ़ी-लिखी थी,स्वावलंबी थी, पर समाज की उस पुरातन सोच ने उसे फिर से एक 'अशुभ' विधवा की श्रेणी में खड़ा कर दिया था। उस शाम, जब वह पार्क पहुँची, तो उसकी आँखें पनीली थीं। वह फफक कर राघवेंद्र जी के सामने रो पड़ी।

"राघवेंद्र जी, हम चाँद पर पहुँच गए हैं, पर मानसिकता आज भी उसी संकीर्ण गली में कैद है। गोपाल की मृत्यु के बाद मैंने खुद को हर रस्म से पीछे कर लिया ताकि किसी को असुविधा न हो। पर आज उन पड़ोसियों के शब्दों ने एहसास

कराया कि मेरी पहचान केवल एक 'अकेली औरत' की है।"

राघवेंद्र जी ने गहराई से उसे देखा और शांत स्वर में कहा, "दीपाली, तुम तो एक स्वाभिमानी और सशक्त महिला हो, फिर इन आँखों में सावन क्यों उतरा है? वे महिलाएं तुम्हारी काबिलियत मजबूती से डरती हैं, ईर्ष्यालु हैं , ऐसे वाक्यों से वे तुम्हारी मजबूती परखतीं हैं "

"हाँ ! सही कहते हैं आप..मैं विचलित नहीं होऊंगी अब..ज्यादा मजबूती से बच्चों को कलाओं में निपुण करूंगी"शांत किन्तु दृढ़ शब्दों में दीपाली बोली

अगले दिन बड़ी खुश थी दीपाली...बड़े उत्साह से बता रही थी

"आज सामने वालों ने मुझे अपने बेटे की शादी में पीले चावल बाँटने को बुलाया है, वे तो आपको भी ढूँढ रहे थे।"

अचानक अपनी ओर अपलक देखते हुए राघवेंद्र से आँखें मिलीं तो शर्मा गई थी दीपाली..

जैसे-जैसे राघवेंद्र और दीपाली का रिश्ता गहरा हुआ, उन्होंने इस बेनाम रिश्ते को एक नाम देने का सोचा। लेकिन यह राह इतनी सुगम न थी। जब दीपाली ने चैतन्य से इस बारे में बात की, तो वह बिफ़र पड़ा।

"माँ! इस उम्र में समाज क्या कहेगा? लोग हँसेंगे मुझ पर कि मेरी माँ ने बुढ़ापे में शादी कर ली।" चैतन्य का तर्क आधुनिकता के लबादे में लिपटा संकीर्ण विचार था।

उधर राघवेंद्र के बच्चों का भी यही हाल था, "पिताजी, आपकी गरिमा एक जज की रही है, यह सब शोभा नहीं देता।"

महीनों तक चुप्पी का साया रहा। न दीपाली पीछे हटी, न राघवेंद्र। उन्होंने तय किया कि वे छुपकर नहीं, बल्कि सम्मान के साथ साथ रहेंगे।

उन्होंने बच्चों को बुलाया और राघवेंद्र ने एक मजिस्ट्रेट की गरिमा के साथ कहा, "बेटा, तुम लोग अपनी दुनिया में व्यस्त हो। क्या तुमने कभी सोचा कि जब तुम्हें बुखार होता है तो अनन्या साथ होती है, पर जब तुम्हारी माँ को रात में अकेलापन काटता है, तो उसके पास कौन होता है? हमें तुम्हारी संपत्ति नहीं, सिर्फ तुम्हारा साथ चाहिए।"

दीपाली ने भी धीमे स्वर में कहा, "चैतन्य, जिस समाज के डर से तुम मुझे रोकना चाहते हो, उसी समाज ने मुझे 'अकेला' कहकर अपमानित किया था। तब तुम यहाँ नहीं थे।"

बच्चों के पास कोई उत्तर न था। माता-पिता के तर्क में सत्य की वह आंच थी जिसने बच्चों के अहंकार की बर्फ को पिघला दिया। अंततः, चैतन्य और राघवेंद्र के बच्चों ने अपनी गलती मानी और इस रिश्ते को सहर्ष स्वीकार किया।

पार्क की उसी बेंच पर, जहाँ से सब शुरू हुआ था, राघवेंद्र ने दीपाली का हाथ अपने हाथों में लिया।

राघवेंद्र: "दीपाली, प्रकृति ने तुम पर बहुत परीक्षाएँ ली हैं। तुम कहती हो कि तुम पत्थर की तरह सख्त हो चुकी हो और अब कोई पहाड़ भी तुम्हें तोड़ नहीं सकता।"

दीपाली: (आँखों में चमक के साथ) "हाँ, राघवेंद्र जी। दुखों ने मुझे इस्पात बना दिया था।"

राघवेंद्र: "शायद दर्द तुम्हें न तोड़ पाया, लेकिन देखो, मेरा प्यार तुम्हें पिघलाने में सफल रहा।"

दीपाली (सकुचाते हुए)"और आपके साथ ने मुझे फिर से जीना सिखा दिया।"

सूरज डूब रहा था... मगर उस शाम दो जीवनों में एक नई सुबह जन्म ले रही थी।

राघवेन्द्र:"अब हमारे बच्चे भी हमारे साथ हैं। यह सारा संसार मिलकर भी तुम्हें जितना अनुराग दे, वह मेरे इस निस्वार्थ प्रेम के आगे कम होगा।"

दीपाली की आँखों से आँसू बह निकले, पर इस बार वे दुख के नहीं, तृप्ति के थे। उसने महसूस किया कि उम्र का कोई भी पड़ाव 'नया आरम्भ' करने के लिए अंतिम नहीं होता।

सांझ का आसमान उस दिन गहरे सिंदूरी रंग में डूबा हुआ था। डूबते सूरज की किरणें सोसायटी के पार्क की घास पर ऐसे बिखरी थीं, मानो किसी चित्रकार ने हरे कैनवास पर सुनहरी तूलिका फेर दी हो।